आय का सवाल, ज्ञान और किसान आंदोलन

दिल्ली की सीमाओं पर 380 दिनों तक चला किसान आंदोलन स्थगित किया गया है। 22 फसलों केलिए MSP की कानूनन अनिवार्यता की मांग आंदोलन की सबसे महत्वपूर्ण और दूरगामी मांग रही है। MSP के इस मुद्दे पर एक कमेटी बनाई जाएगी, लेकिन उसकी कार्यशर्तों का खुलासा नहीं हुआ है।

इसमें दो राय नहीं है कि खेती किसानी करनेवाला समाज ज्ञानवान कुशल श्रमिक होते हैं। मौसम, मिट्टी, पानी, खाद, बीज, पौधों का स्वास्थ्य, बीमारी के उपाय, खरपतवार की रोक आदि पर ज्ञानपूर्वक प्रयोग, खेती का प्रबंधन, उत्पादन का प्राथमिक प्रसंस्करण, बाजार में लेन देन, पूंजी का प्रबंधन, सरकारी विभागों से निपटना, ऐसे तमाम कार्य खेती से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। सरकारी कर्मचारी, कॉर्पोरेट मैनेजर/इंजीनियर या अस्पतालों में कार्यरत डॉक्टर/नर्स, इन के कार्यों से तुलना करें तो खेती किसानी बराबर या अधिक जटिल कार्य मालूम पड़ते हैं। लेकिन कुशल प्रबंधक, कुशल श्रमिक की बात तो दूर, मनरेगा में कार्य करनेवाले अकुशल मज़दूर की मज़दूरी के बराबर तक भी किसान की मेहनत को आंका नहीं जाता है। Commission for Agricultural Costs and Prices (CACP) जिन 22 फसलों केलिये सरकार से MSP की सिफारिश करता है, उस गणना में किसान का श्रम मनरेगा की मज़दूरी से भी कम पकड़ता है।
संगठित क्षेत्र (सरकारी विभाग, कॉर्पोरेट इकाइयां) में कार्य करने वाले अमूमन B Tech, MBA, या अन्य उपाधि-धारी होते हैं और इस कारण उन्हें ज्ञानवान माना जाता है। इन यूनिवर्सिटी/कॉलेज के पढ़े लोगों के पास ही ज्ञान है, बाकी खेती-किसानी, बुनकरी, कारीगरी या अन्य पारंपरिक धंधे करने वाले (लोक विद्याधर) समाज के पास कोई ज्ञान नहीं है या उनका ज्ञान निम्न दर्जे का है, इस मिथ्या पर आधारित राजनीति और अर्थनीति आज चल रही है। लोकविद्याधर समाज के शोषण के मूल में यह सोच है कि उनका श्रम उतना मूल्यवान नहीं है जितना कि यूनिवर्सिटी/कॉलेज में पढ़कर उपाधि प्राप्त करनेवालों के। जब तक मानव समाज में यह मिथ्या हावी रहेगी, तब तक लोक विद्याधर समाज का शोषण समाप्त नहीं हो सकता।

लोक विद्याधर समाज का सबसे बड़ा हिस्सा खेती किसानी करनेवालों का है। किसान आंदोलन के इतिहास में किसानों की आय का मुद्दा स्वतंत्र भारत में करीब पचास वर्षों से छाया हुआ है। MSP को कानूनन अनिवार्य बनाने की मांग के पीछे किसान असल में अपने श्रम और ज्ञान कलिये संगठित क्षेत्र में कार्यरत लोगों के श्रम और ज्ञान के बराबर का दर्जा मांग रहा है।

किसान आंदोलन की इस मांग को संगठित क्षेत्र से जुड़े पढ़े लिखे लोग पचा नहीं पा रहे हैं। उन्हें लगता है कि किसान अपनी औकात के बाहर बढ़ रहा है और वर्तमान तंत्र और उसे संचालित करनेवालों के बर्चस्व को ही चुनौती दे रहा है। अतः साम दण्ड भेद किसी भी तरीके से किसानों की मांग ठुकराने की कोशिश हो रही है। तरह तरह के बहाने खोजे जा रहे हैं। जैसे सभी फसलों कलिये देश भर MSP कानूनन अनिवार्य करना असंभव है क्योंकि इस से सरकार दिवालिया हो जाएगी। पर वास्तविकता तो यह है कि किसानों को MSP दिए बगैर ही सरकार और वित्त व्यवस्था दिवालिया हो रही है। अग्रणी कॉर्पोरेटों द्वारा कर्ज़ में लिए गए लाखों करोड़ रुपया डूब रहा है और NPA में तब्दील हो रहा है। इसकी न तो कोई इलाज हो रही है, और न सरकार और विशिष्ट लोग इसको लेकर गंभीर हैं। पर किसानों को MSP अनिवार्य रूपसे देने पर वित्त व्यवस्था डूब जाएगी इसका ढिंढोरा पीटा जा रहा है। अनुमान है कि MSP कानूनन अनिवार्य करने पर कुछ लाख करोड़ रुपये अतिरिक्त खर्च होंगे। वर्तमान में सर्वजनिक क्षेत्र के बैंकों पर NPA 10 लाख करोड़ रुपये के ऊपर है। जो प्रतिवर्ष कुछ लाख करोड़ रुपये की दर से बढता जा रहा है। अतः MSP कानूनन लागू होना और अर्थव्यवस्था के डगमगाने की बात को एक दूसरे से जोड़ना तार्किक बिल्कुल नहीं है।

देश की कुल आबादी में आधे से ज़्यादा हिस्सा किसानों का है। असंगठित क्षेत्र को जोड़ें अर्थात सम्पूर्ण लोक विद्याधर समाज की चर्चा करें तो उनकी आबादी कुल आबादी का 80-90% पहुंच जाती है। सवाल उठता है कि कृषक समाज या सम्पूर्ण लोकविद्याधर समाज की आमदनी तुलनात्मक रूप से दुगुनी करने पर देश कैसे चौपट हो जाएगा? समझ में यही आता है इस से सामाजिक विषमता कम होगी और सम्पूर्ण देश समृद्ध और खुशहाल होगा। पर विशिष्ट लोग इससे सहमत नहीं है। उल्टे वर्तमान में जिस प्रकार कुछ गिने चुने कॉर्पोरेट घरानों की तिजोरियों में देश की आधी संपत्ति बंद हो रही है, उससे देश का गरीबीकरण और बेरोज़गारीकरण

भयानक रूप से हो रहा है। पर इसे विकास बतानेवाले विशिष्ट लोग और कॉर्पोरेट दलाल सरकार और मीडिया पर हावी हैं। विकास के नाम पर चल रहे इस दोगलेपन को ही किसान आंदोलन चुनौती दे रहा है।

किसानों की आय दुगुनी करना सरकार की घोषित नीति है। शायद तुलनात्मक दृष्टि से नहीं, बल्कि संगठित क्षेत्र ले लोगों की आय जब चौगुनी होगी, तब किसानों की आय दुगुनी होगी, यही सोच सरकार की है। वरना MSP का कानून लागू कर अपनी नीति सरकार अमल कर चुकी होती।

व्यापक संदर्भ में देखें तो किसानों की आय बढ़ाने की दो नीति सकती हैं: एक, MSP द्वारा फसलों के दाम बढ़ाकर और उसे अनिवार्य बनाकर; दूसरी, किसान/लोकविद्याधर समाज के बैंक खातों में सरकारी खजाने से पैसे सीधे ट्रांसफर कर, जिसकी झलक PMKISAN (प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि) योजना में हम देख सकते हैं।

विश्व व्यापार संगठन के अंतर्गत कृषि पर जो समझौता हुआ है, उसमें फसलों के मूल्य सीधे सरकारी समर्थन और सब्सिडी के द्वारा बढ़ाना price-distorting अर्थात बाजार के नियमों का उल्लंघन करना माना जाता है और इसका प्रयोग प्रत्येक फसल के अलावा सभी फसलों के कुल उत्पादन केलिये भी एक सीमा तक (de minimis level: विकासशील देशों केलिए प्रत्येक फसल के कुल उत्पादन और कुल कृषि उत्पादन दोनों कलिये कुल मूल्य के10 प्रतिशत तक, विकसित देशों कलिये 5 प्रतिशत तक) ही अनुमन्य है। भारत में फ़ूड सिक्योरिटी के नाम पर हो रही सरकारी खरीद और भंडारण के खर्च शेष बिजली, खाद आदि की सब्सिडी में जोड़ें, तो यह सब्सिडी कुल कृषि उत्पादन के मूल्य के 10% से ज़्यादा हो रही है, यह आरोप भारत पर विकसित देशों द्वारा लगाया जा रहा है। अतः सरकारी प्रत्यक्ष सब्सिडी से फसलों के मूल्य बढ़ाने की अधिक गुंजाइश नहीं है, यह दलील दी जा रही है। खाद्य सुरक्षा, खाद्य संप्रभुता से जुड़े इस प्रश्न के प्रति सरकार का रुख क्या हो, यह एक विचारणीय मुद्दा है। एक विकल्प यह है कि WTO के कृषि समझौते से भारत बाहर आएं। क्या सरकार ऐसा कर पायेगी? दूसरा विकल्प विश्व व्यापार संगठन के कृषि समझौते को नए सिरे से इस तरह ढ़ालने की दिशा में भारत व अन्य विकासशील देश मिलकर दबाव डालें जिससे प्रत्यक्ष सब्सिडी द्वारा मूल्य समर्थन करने की छूट विकासशील देशों को प्राप्त हों।

किसानों की आय दुगुनी करने का दूसरा उपाय सरकारी खजाने से पैसे किसानों के बैंक खातों में प्रति एकड़ एक निश्चबित राशि के रूप में सीधे ट्रांसफर करना है। जैसे PMKISAN योजना में वर्तमान में नाम मात्र केलिए किया जा रहा है। कोई भी किसान अपना आत्मसम्मान इसमें देखता है कि वह अपने पुरुषार्थ से, अपने मेहनत का फल भोग कर जियें, न कि किसी सरकारी भीख के मोहताज होकर। किसान यह चाहता है कि उसे सरकारी तंत्र पर निर्भर न होना पड़े। यह तभी संभव है जब सरकार और कॉर्पोरेट दोनों के प्रभावों से बाजार मुक्त सम-विनिमय (equal exchange) के सिद्धांत पर चलनेवाले बाजारों का निर्माण हों। यह एक दूरगामी लक्ष्य है। यह किसान समाज का स्वराज का लक्ष्य है।

उपरोक्त लक्ष्य दो चरणों में हासिल हो सकते हैं। पहले चरण में यह कार्य करना होगा कि बाजारें को सरकारी हस्तक्षेपों से मुक्त करें। यह केवल एक हमारे देश की बात नहीं है, विश्व के हर देश की सरकार का भी बाजार में हस्तक्षेप करने की ताकत नगण्य करना होगा। यह इसलिए जरूरी है कि आज सारी सरकारें मल्टीनेशनल कंपनियों के गुलाम हो चुकीं हैं। और वैश्वीकरण के इस दौर में मल्टीनेशनल कंपनियां विश्व बाजार पर आधिपत्य सरकारों के ज़रिए कर रहीं हैं। जब सरकारों का संरक्षण मल्टीनेशनल कंपनियों को प्राप्त होना बंद हो जाएगा, तब बाजार में छोटे उत्पादकों और उपभोक्ताओं की ताकत बढ़ेगी। और बाजार के सम-विनिमयी (equal-exchange based) होने की संभावना भी बढ़ जाएगी। अतः दूसरे चरण का कार्य बाजारों को कॉरपोरेटों के कब्जे से मुक्त कर उन्हें सम-विनिमयी करने की होगी।

किसानों, छोटे उत्पादकों, कारीगरों, बुनकरों, व अन्य धंधे अपनाकर जीवनयापन करनेवाले लोकविद्याधर समाज के स्वराज पाने की दिशा क्या होगी? यह विषय अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि जिस प्रकार का पूंजीवादी विकास दुनिया मे चल पड़ा है, उससे लाभान्वित आबादी का हिस्सा आज 10-15% प्रतिशत ही है, और यह प्रतिशत निरंतर कम होता जा रहा है। टेक्नोलॉजी, विशेषकर डिजिटल टेक्नोलॉजी पर जिस तरीके से सरकारें और कॉर्पोरेट नियंत्रण बढ़ा रहे हैं, उससे राजनीतिक आर्थिक सत्ता केंद्रीकरण की प्रक्रिया तेजी से बढ़ रही है।

इसका असर भारत के राष्ट्रीय सकल उत्पादन (GDP) में देखा जा सकता है। GDP में संगठित क्षेत्र का योगदान विगत कुछ वर्षों से तेजी से बढ़ रहा है और आबादी का 90 प्रतिशत लोकविद्याधर समाज का योगदान गिर रहा है। यह दर्शाता है कि सकल उत्पादन में मानव कौशल व श्रम महत्वहीन हो रहा है। मानव की भूमिका एक क्रियाशील उत्पादक से एक निर्जीव उपभोक्ता में रूप में सिकुड़ती जा रही है। कमोवेश दुनिया भर यही हो रहा है। साथ लोकविद्याधर समाज में बेरोजगारों और अर्ध-बेरोज़गारों की संख्या बढ़ती जा रही है। अतः आम उपभोक्ताओं के हाथ में क्रयशक्ति कैसे बढ़ें, यह आज अर्थशात्रीयों की चिंता का मुख्य विषय बन चुकी है। कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, असंगठित क्षेत्र की आबादी की क्रयशक्ति भले ही न बढा पाएं, पर उन्हें मरने से रोकने कलिये (वरना सामाजिक उथल पुथल बढ़ेगा, अशांति बढ़ेगी) यूनिवर्सल बेसिक इनकम की योजना लागू करनी चाहिए। तो कुछ और अर्थशास्त्री/राजनेता जनसंख्या नियंत्रण लागू करने की वकालत करते हैं। लेकिन कोई भी अर्थशास्त्री बाजार में व्याप्त विषम-विनिमय आधारित लेन देन को समाप्त करने की बात करना तो दूर, उसकी ओर ध्यान देना तक नहीं चाहता है। आखिर पूंजीवाद का आधार यही तो है।

आज लोकविद्याधरों के सामने यह चुनौती है कि अपने मेहनत के बल पर एक सम्मानपूर्वक ज़िंदगी कैसे बिताएं। इसका दूरगामी उपाय लोकविद्याधर समाज का स्वराज स्थापित करना ही है। पर तब तक आय के सवाल का निराकरण कैसे हो, इसपर स्पष्टता लाने की ज़रूरत है। मरता क्या नहीं करता इस कहावत को सही मानते हुए, फिलहाल सरकार के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप से ही यह संभव दिख रहा है। चाहे वह बाजार में लोक विद्याधर समाज द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्य समर्थन के द्वारा हो या सीधे राजकोष से पैसे के ट्रांसफर के द्वारा आय संवर्धन से हो, लोक विद्याधर की आय बढ़ाने की सरकारी नीति की तत्काल आवश्यक है।

- कृष्ण गांधी
- दिनाँक 24 दिसंबर 2021